गुरू – सतिगुरू
भाग – १

“गुरू शब्द ग्री धातु से बना है – जिसका अर्थ है निगल जाना और समझाना। **जो अज्ञानता को खा जाता है तथा शिष्य को तत्त ज्ञान देता है , वही गुरू है ।**

इसलिए अज्ञानता या भ्रम के अंधकार को दूर करने वाली **शखसीयत** या **अनुभवी ज्ञान** को ही गुरू कहा जाता है ।

अज्ञानता दो प्रकार की होती है–

1. **सांसारिक अज्ञानता** :– बीमारी, अनपढता तथा अनुभवहीनता के कारण मनुष्य के दिमाग का विकास पूरी तरह नहीं हो पाता। इस अज्ञानता के कारण मनुष्य संसार के हर क्षेत्र में दुखी होता है ।

2. **अध्यात्मिक अज्ञानता** :– सांसरिक, धार्मिक तथा आत्मिक मंडल के विषय में दृढ़ किए हुए, सुने–सुनाए, नाममात्र, अपूर्ण, गलत ख्याल, जानकारी या धारणाओं को ही आध्यात्मिक अज्ञानता या अंधकार कहा गया है।

आजकल स्कूल व कालेज में साधारण तथा वैज्ञानिक विद्या बहुत उन्नति कर चुकी है तथा कर रही है। इस मायिकी विद्या ने हमें बहुत से शारीरिक तथा मानसिक सुख प्रदान किये हैं, परन्तु विज्ञान के अदभूत चमत्कारों से हमारा मन इतना चुंधिया गया है कि हम अपने केन्द्र **‘आत्मा’** को पूर्णतया भूल गए हैं। जिस कारण हमारा जीवन **‘आत्म–हीन’, रूखा–सुखा तथा स्वार्थी बन गया है।** इसके साथ ही साथ हमारा **‘अहम्’** भी फलता–फूलता जा रहा है तथा हमारे अन्दर

दैवीय गुणों की अपेक्षा असुरी अवगुण – काम, क्रोध, निंदा, नफरत, स्वार्थ, बेईमानी, भ्रष्टाचार (corruption), लड़ाईयां, झगडे प्रवेश कर गए हैं और जीवन के हर क्षेत्र में प्रधान हैं। दुनिया में हर ओर लूट–खसूट, धक्के शाही, जुल्म, अत्याचार व लड़ाई–झगड़े दिन प्रतिदिन बढ़ रहे हैं। जिस कारण चारों ओर **अशांति बढ़ रही है** और सारा संसार ही **'मायिकी अग्नि कुण्ड'** बन गया है।

गुरू नानक साहिब ने संसार की इस दशा को देख कर अथवा महसूस करके यूं उपदेश दिये हैं–

एहु जगु जलता देखि कै भजि पए हरि सरणाई राम ।। (पृ. ५७१)

आतस दुनीआ खुनक नामु खुदाइआ ।। (पृ. १२९१)

मायिकी विद्या और विज्ञान का इतना विकास होने के **बावजूद** भी दुनिया **जल–बल–सड़** रही है और अत्यन्त दुखी हो रही है। इसका तात्पर्य यह है कि सारी मायिकी विद्या, दुनिया की **'गुप्त सुलगती आग' को बुझाने** और संसार में **सच्ची, अटल, सुख–शान्ति लाने में असमर्थ रही है।**

दूसरे शब्दों में इस सांसारिक **'अग्नि को बुझाने' मन का अन्धकार दूर करने तथा सुख–शान्ति लाने के लिए,** किसी अन्य उत्तम–श्रेष्ठ **'आत्मिक–विद्या'** अथवा **अनुभवी ज्ञान की आवश्यकता है।** इससे स्पष्ट होता है कि आज सांसारिक विद्या की अपेक्षा **आत्मिक विद्या की ओर ध्यान देने की अधिक आवश्यकता है।**

पड़िआ मूरखु आखीऐ जिसु लबु लोभु अहंकारा ।।
नाउ पड़ीऐ नाउ बुझीऐ गुरमती वीचारा। (पृ० १४०)

मन समझावन कारने कछुअक पड़ीऐ गिआन।। (पृ० ३४०)

हरि पड़ु हरि लिखु हरि जपि हरि गाउ।
हरि भउजलु पारि उतारी।। (पृ० ६६९)

हरि पड़ीऐ हरि बुझीऐ गुरमती नामि उधारा।।
गुरि पूरै पूरी मति है पूरै सबदि बीचारा ।। (पृ० १००९)

बाहरी मायिकी विद्या जहां हमें बाहरी सुख प्रदान करती है, वहां साथ ही साथ हमारे **मन को मैला करके, हमें रसातल की ओर** ले जा रही है और हम

'आत्मिक विद्या' से कोरे या वंचित होते जा रहे हैं। आत्मिक मार्ग में भी **किसी सीमा तक यह सांसारिक शिक्षा या दिमागी ज्ञान सहायक हो सकता है।** इससे आगे इसकी पहुंच नहीं क्योंकि यह माया के **त्रिगुणी दायरे तक ही सीमित है।** इससे ऊपर 'चौथे–पद' का ज्ञान केवल **'अनुभव' का विषय है जो पूर्णतः आत्मिक खेल है तथा बुद्धि की पकड़ से बाहर है।**

आत्मिक शिक्षा के लिए **आत्मिक अध्यापक** (Spiritual Master) या 'गुरू' की आवश्यकता होती है, जो हमारी **चेतनता** (Consciousness) का विकास करके हमें **'आत्मिक ज्ञान' दे सके।** आजकल सांसारिक शिक्षा प्रदान करने वाली युनिवर्सटी (univiersities) **केवल** दिमाग का विकास ही करती है, जो आत्मिक भावनाओं या अति सूक्ष्म **इलाही 'भावना' के अभाव** के कारण, मनुष्य को भावना–हीन, रूरवा–सूरवा **मशीनी बुत्त** (mechanical robot) ही बना देती है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि सांसारिक शिक्षा की आवश्यकता नहीं, अपितु हमें ऐसी सम्पूर्ण–शिक्षा की आवश्यकता है, जो हमारे जीवन के शारिरीक, दिमागी, मानसिक, सामाजिक, **धार्मिक तथा आत्मिक पक्ष का सम्पूर्ण विकास कर सके।** हमारे शिक्षकों तथा प्रबंधकों को इस 'पहलु' पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। पुराने समय में प्राकृतिक वातावरण में स्थित विद्यक और आत्मिक 'गुरू–कुल' बड़े कामयाब थे। जैसे तक्षशिला विश्वविद्यालय'। आजकल भी बंगाल में इस प्रकार का एक विश्वविद्यालय 'शांति–निकेतन' बहुत सफलता से चल रहा है।

जब से संसार की रचना हुई है, तब से ही **आत्मिक–विद्या** प्रज्वलित करने के लिए आवश्यकतानुसार गुरू, पीर–पैगम्बर, साधु, संत, भक्त, गुरमुरव जन प्रकट होते रहे हैं। वह दुनियां को उचित आत्मिक जीवन–सीध देते रहे और अपनी–अपनी शिक्षा तथा बाणी हमारा मार्ग प्रशस्त करने के लिए छोड़ गए।

कुछ समय से **'गुरू' सतिगुरू** के शब्द तथा इसके भावार्थ के विषय में बहुत सी **शंकाएं तथा भ्रम–भ्रांतियां** पड़ी हुई हैं तथा वाद–विवाद चल रहे हैं, जिनका निर्णय करना जरूरी है।

प्रारम्भ में बताया गया था कि अज्ञानतारूपी **अन्धकार को दूर करने वाले प्रकाश को 'गुरू' कहते हैं।** पुरातन समय में हर प्रकार की शिक्षा देने वाले

अध्यापक को भी **'गुरू'** कहते थे क्योंकि वह अपने शिष्यों के अनपढ़ता के अन्धकार को दूर करते थे। यह रीति अभी भी कई स्थानों पर प्रचलित है। संगीत विद्या, शस्त्र विद्या तथा अन्य कई प्रकार की शिक्षा देने वालों को आज भी 'गूरू' कह कर ही सम्बोधित किया जाता है। यह 'गुरू' शब्द अन्य मतों में भी आम प्रचलित है, तथा हमें इस शब्द के विषय में शंका, भ्रम या वाद-विवाद नहीं करना चाहिए तथा न ही 'गुरू' शब्द से घृणा (allergy) करनी चाहिए । हमें अन्य मतों या धारणाओं के सम्बंध में बहुत **विशाल हृदय से सहनशीलता** का प्रदर्शन करना चाहिए। गुरबाणी ने भी बहुत उदार चित्त होकर प्रत्येक मत की धारणाओं का आदर तथा सत्कार किया है। यदि हम ऐसे विशाल तथा उदार दृष्टिकोण से अन्य मतों की धारणाओं पर विचार करें, तो हमारा किसी से कोई वाद-विवाद, वैर-विरोध, लड़ाई-झगड़ा न हो तथा-

ना को बैरी नहीं बिगाना सगल संगि हम कउ बनि आई।। (पृ १२९९)

वाला हमार जीवन हो।

'गुरू' पद का विषय अति सूक्ष्म व दीर्घ होने के कारण ज्ञानियों, विद्वानों, गुरमुखों तथा महापुरूषों के विचार का विषय रहा है और है भी। पहले भी इस विषय पर कई बार विचार-विमर्श, लेख तथा पुस्तकें छप चुकी हैं। गुरबाणी के प्रकाश में इस विषय पर इस लेख द्वारा कुछ विचार संगत के सम्मुख प्रस्तुत हैं।

'गुरू' शब्द पर विचार करने से पहले आत्मा, परमात्मा, संसार तथा माया के विषय में सम्पूर्ण सामान्य ज्ञान (overall knowledge) पर प्रकाश डालना लाभदायक होगा ।

माना गया है कि परमात्मा ने अपनी मौज में इस संसार की रचना की तथा इसमें चौरासी लाख योनियां उत्पन्न करके, इस विशाल सृष्टि को चलाने के लिए **'हुकुम'** रूपी प्रबन्ध चलाया, जो सदा इकसार, सहज, पूर्ण नियम-बद्ध, समय की पाबंदी में चल रहा है। परमात्मा '१' एक है तथा जब संसार की रचना की गई तो एक से अनेक रूप हो गए । इस अनेकता को बाणी में 'संसार', 'माया', 'कुदरत' 'त्रि-गुण' आदि नामों से पुकारा गया । जिस प्रकार सूर्य तथा उसकी किरणें, प्रत्येक वस्तु में अपनी जीवन-रौ प्रवृष्ट करती है, उसी प्रकार सारी रचना में ईश्वर की 'शक्ति', 'जीवन-रौं' (Life & current) गुप्त रूप में काम कर रही है।

वैज्ञानिकों ने पदार्थ को महीन से महीन तोड़ कर यह सिद्ध कर दिया है कि यह निर्जीव पदार्थ (Dead matter) अदृष्य तथा सूक्ष्म

प्रोटोन्स (Protons)

न्यूट्रोन्स (Neutrons)

इलैक्ट्रोन्स (Electrons)

आदि महीन अणुओं (minute neuclear particles) का बना हुआ है। इलैक्ट्रोन्स की हरकत द्वारा ही दुनिया के समस्त पदार्थ एवं विद्युत (electric current) अस्तित्व में आते हैं। ठीक इसी प्रकार धरती की प्रत्येक वस्तु 'अदृष्य आकर्षण' या 'गुरूत्व – आकर्षण' (gravity) **के अधीन है।** प्रत्येक वस्तु के परमाणु (Atoms) इस 'आकर्षण' के नियम का पालन करते हैं।

'पदार्थिक – आकर्षण' भी 'चुम्बकीय – आकर्षण की भांति 'अचेतन – नियम' अनुसार काम करता है। इस प्रकार के प्राकृतिक नियम अचेत होने के कारण, इलाही नियमों से पृथक किये जा सकते हैं। उपरोक्त दोनों उदाहरणों से सिद्ध होता है कि ठोस निर्जीव – पदार्थ (dead matter) में भी 'शक्ति' काम करती है। परन्तु यह 'शक्ति' और इसके नियम 'चेतन' नहीं होते क्योंकि यह बुद्धि (intelligence) तथा भावनाओं (emotions) से वंचित होते हैं। इन दृष्यमान्, सांसारिक तत्वों (elements) तथा इनके अचेत नियमों का चालक (controller or driver), एक अन्य 'सत् – चित् आनन्द' स्वरूप 'परम – तत्व' (primal element) है। यह जीवन 'आत्मिक – रौं' (Divine Life current) 'अनहद – धुनि' के रूप में समस्त सृष्टि में व्याप्त है। इस आत्मिक – जीवन – रौं' में ही इलाही निर्मल ज्ञान, शक्ति, प्रकाश तथा अन्य अनेक आत्मिक गुण परिपूर्ण हैं, जिन्हें बाणी में –

नाम

शब्द

हुकुम

प्रिम रस

अनहद झंकार

शब्दों द्वारा दर्शाया गया है।

यह संसार उस **गुप्त 'परम–तत्व',** जीवन–रौं', 'नाम', 'शब्द', 'हुकुम' की शक्ति तथा प्रकाश के सहारे चल रहा है परन्तु जीव अपने इस **'परम–तत्व' के अस्तित्व तथा विरासत से अनभिज्ञ है।**

संसार में लोग दो प्रकार का जीवन व्यतीत करते हैं–

प्रथम – अज्ञानता वाला तथा

द्वितीय – अनुभवी प्रकाश वाला ।

अज्ञानता या भ्रम वाले जीवन में, सारा संसार अपने केंद्र 'जीवन–रौं' तथा 'नाम' से अनभिज्ञ होने के कारण, **अहम् के सहारे त्रिगुणी माया में विचरण करता है।** इसका चित्र गुरबाणी में यूं रवींचा गया है –

भरमे आवै भरमे जाइ।।
इहु जगु जनमिआ दूजै भाइ ।। (पृ. १६१)

इहु जगु भरमि भुलाइआ मोह ठगउली पाइ।। (पृ. २३३)

भरमे भूला फिरै संसारु ।।
मरि जनमै जमु करे खुआरु ।। (पृ. ५६०)

त्रै गुण माइआ भरमि भुलाइआ हउमै बंधन कमाए ।। (पृ ६०४)

साधो इहु जगु भरम भुलाना ।।
राम नाम का सिमरनु छोडिआ माइआ हाथि बिकाना ।। (पृ. ६८५)

बिनु सबदै सभु अंध अंधेरा गुरमुखि किसहि बुझाइदा ।। (पृ १०६५)

यह भ्रम–अंधेरा अथवा अज्ञानता हमारे मन की **सूक्ष्म अवस्था है,** जो सांसारिक विद्या द्वारा परिवर्तित नहीं हो सकती क्योंकि गुरबाणी अनुसार इसे **केवल 'गुरू' ही दूर कर सकता है।**

कहु नानक गुरि खोले कपाट ।।
मुकतु भए बिनसे भ्रम थाट ।। (पृ १८८)

डीगन डोला तऊ लउ जउ मन के भरमा ॥
भ्रम काटे गुरि आपणै पाए बिसरामा ॥ (पृ ४००)

जे सउ चंदा उगवहि सूरज चड़हि हजार ॥
एते चानण होदिआं गुर बिनु घोर अंधार ॥ (पृ ४६३)

गुर गिआन अंजनु सतिगुरू पाइआ अगिआन अंधेर बिनासे ॥ (पृ. ५७३)

जब हम **'गुरू' या 'सतिगुरू'** का वर्णन करते हैं या सुनते हैं, तो तत्काल हमारा ध्यान 'देह' स्वरूप गुरूओं की ओर सहज ही चला जाता है, जो तस्वीरों या कलैन्डरों पर छपे होते हैं। परन्तु हमारी यह **'देह स्वरूप' कल्पना या धारणा, गुरबाणी के आशय के अनुकूल नहीं है।**

गुरबाणी में 'गुरू' पद कें आगे या पीछे अनेक विशेषण लगाए गए हैं, जैसे –

एक–गुरू
पूरा–गुरू
सति–गुरू
सच्चा–गुरू
गुरू–बोहिथ
गुरू–रखेवट
गुरू–तीर्थ
गुरू –दरियाओ
गुरू–पीर
गुरू–पारस
गुरू–दीपक
गुरू – पिता
गुरू–माता
गुरू–दाता
गुरू–हिवै घर
गुरू –शीतल
गुरू–मित्र

गुरू – बाल – सखाई

गुरू – परमेश्वर

गुरू – पारब्रह्म

गुरू – गोबिंद

गुरू – सिख

गुरू – साधु

गुरू – संत

गुरू – ब्रह्मज्ञानी

गुरू – देव

गुरू – शब्द, आदि।

'गुरू परमेश्वर' पद पर विचार करने की आवश्यकता है। **जब लोहा आग में गरम करने से लाल हो जाता है,** तो हम कहते है कि लोहा **आग की भांति लाल** होकर **'अग्निस्वरूप'** हो गया है। इसी प्रकार शबद – रूप 'गुरू' अकालपुरू ा की **'समीपता'** में **'अकाल रूप'** ही हो जाता है तथा उस अवस्था के लिए **'गुरू परमेश्वर'** पद का प्रयोग किया गया है। उदाहरणस्वरूप सूर्य की किरणें सूर्य के समीप 'सूर्य रूप' होती हैं, परन्तु सूर्य से दूर होने पर मात्र किरणें ही रह जाती है। उपरोक्त दृ टकोण के द्वारा अन्य सभी विशे ाण भी सहज ही समझ आ सकते है।

इन सभी विशे ाणों से ज्ञात होता है कि गुरमति अनुसार 'गुरू' शब्द का संकेत किसी सूक्ष्म 'परम – तत्व' की ओर है, न कि 'देह स्वरूप' की ओर। वाणी में स्पष्ट रूप से लिखा है –

हिरदै चरण सबदु सतिगुर को नानक बांधिओ पाल।। (पृ. ६८०)

सबदु गुरू सुरति धुनि चेला। (पृ. ९४३)

गुरमूरति गुर सबदु है साध संगति विचि परगटी आइआ।

(वा.भा.गु. २४/२५)

इसलिए गुरमति अनुसार **'गुरू' – 'शबद' रूप** है तथा यह 'शबद', सूक्ष्म 'परम – तत्त्व', 'नाम', 'जीवन – रौ' (Spiritual Essence, Divine Life Current) 'ज्योति' है, जो सर्वत्र ओत – प्रोत परिपूर्ण है। उपरोक्त सभी विशेषण इसी गुरू शब्द को शोभा देते हैं तथा इसी के लिए ही प्रयोग किये गए है।

जिस प्रकार सभी गुरू साहिब 'ज्योति स्वरूप' या 'शबद स्वरूप' होते हुए भी, उन्होंने हमें साक्षात होकर और हमारी 'अल्प बुद्धि' को समझाने व विश्वास दिलाने के लिए शरीर **धारण किया और हमारा मार्ग प्रशस्त किया। दसवें पातशाह ने हम पर अत्यन्त कृपा करके, 'शब्द स्वरूप' गुरू–बाणी के सम्पूर्ण स्वरूप 'गुरू–ग्रंथ साहिब' से हमारा नाता जोड़ा। इस प्रकार सदा के लिए हमें देह–धारी गुरू के भ्रम से बचा लिया।**

आपे सतिगुरू आपि सबदु जीउ जुगु जुगु भगत पिआरे।। (पृ. २४६)

सबदु गुर पीरा गहिर गंभीरा बिनु सबदे जगु बउरानं।। (पृ. ६३५)

सतिगुरु पुरखु दाता वड दाणा।।
जिसु अंतरि साचु सु सबदि समाणा। (पृ. १०३०)

सचा सतिगुरु सबदु अपारा।।
तिस दै सबदि निसतरै संसारा।। (पृ. १०५५)

गुर महि आपु समोइ सबदु वरताइआ।। (पृ. १२७९)

आनद मूलु रामु सभु देखिआ गुर सबदी गोविदु गजिआ।। (पृ. १३१५)

जह कह तह भरपूरु सबदु दीपकि दीपायउ।। (पृ. १३९५)

निरगुण सरगुण सतिगुरू विरला को गुर सबद समासी। (वा.भा.गु ४०/२१)

अभी तक **'शबद गुरू'** का ज्ञान या सिद्धांत, हमारी दिमागी समझ तक ही **सीमित** है, इसलिए संगत में कई बार बहुत तत्व वाद–विवाद तथा झगड़े होते रहते हैं। वास्तव में **शबद 'गुरू' का विषय, त्रि–गुणी सीमा से बाहर, चौथे पद का अनुभवी खेल है।**

"शबद" के दो स्वरूप हैं–

एक **'शाब्दिक स्वरूप'** है, जो गुरबाणी के रूप में हमारे समक्ष है।

तथा

दूसरा स्वरूप **'परम–तत्व', 'आत्म–रौ, 'नाम', ज्योति' है,** जो केवल गुरू–प्रसाद द्वारा ही 'अनुभव' हो सकता है।

जिउ सूरजु किरणि रविआ सरब ठाई सभ घटि घटि रामु रवीजै।। (पृ. १३२६)

इस प्रकार जब तक हमारी अन्तर–आत्मा में **'गुरू–शबद' का प्रकाश नहीं होता तथा 'गुरू शबद' द्वारा गोबिंद नहीं 'गर्जता',** तब तक हम अज्ञानता के अंधकार में ही रहेंगे तथा **भ्रांतियां बनी रहेंगी–** चाहे हम **शारीरिक रूप में गुरू ग्रंथ साहिब को शीश निवाते रहें तथा दिमागी रूप मे उन्हें 'गुरू' मानते रहे।**

उदाहरणस्वरूप **सूर्य** की किरण प्रकट होने से पहले अंधकार में हम सूर्य के **'प्रकाश' के विषय में चाहे जितना भी ज्ञान घोटते रहें** या बहस करते रहें, वह सब **फोकट ही है।** इसी प्रकार 'गुरू' के विषय में हमारा ज्ञान तथा श्रद्धा, हमारी **मनोकल्पना तक ही सीमित है।** हमारी मानसिक 'भावना' अनुसार ही हमारे जीवन पर प्रभाव पड़ेगा।

जेहा सतगुरु करि जाणिआ तेहो जेहा सुखु होइ।। (पृ. ३०)

सतिगुर नो जेहा को इछदा तेहा फलु पाए कोइ।। (पृ. ३०२)

सतिगुर पुरखु अगंम है निरवैरु निराला।.........
जेहा मुहु करि भालीए तेहो वेखाला। (वा. भा. गु. ३४/१)

सतिगुर की कृपा के फलस्वरूप साध–संगत में विचरण करते हुए 'गुरू शबद' अथवा **'गुरू मंत्र' के अभ्यास** द्वारा ही हमारे अन्दर **गोबिंद गर्जता है तथा प्रकट होता है।**

किरपा करे जिसु पारब्रहमु होवै साधू संगु।।
जिउ जिउ ओहु वधाईऐ तिउ तिउ हरि सिउ रंगु।। (पृ. ७१)

साहिबु मेरा सदा है दिसै सबदु कमाइ।। (पृ. ५०९)

वड भागि पाइआ गुरि मिलाइआ साध कै सतसंगीआ।। (पृ. ७०४)

मनि तनि प्रभु आराधीऐ मिलि साध समागै।। (पृ. ८१७)

साध संगति गुर सबदु कमाई। (वा.भा.गु. १६/१)

जिस प्रकार अभी तो, **'गुरू'** शब्द कहते या सुनते ही हमारा ध्यान तत्काल गुरूओं के **'देह–स्वरूप'** की ओर जाता है, उसी प्रकार जब 'गुरू–मंत्र' का अभ्यास करते–करते हमारी अन्तर–आत्मा में **अनुभव खुल जाए, तो 'गुरू' शब्द सुनते या कहते ही, हमारे हृदय में अपने सतिगुरू का सही 'शबद–स्वरूप' ज़ाहिरा–ज़हूर (प्रत्यक्ष प्रकट) ओत–प्रोत प्रतीत होगा।** इस शबद–गुरू की

मधूर और ममतामयी अनुभवी 'गोद' में इलाही 'प्रिम – रसपान' करते हुए, हमारे हृदय में से स्वतः ही निकलेगा –

तुमरे गुण किआ कहा मेरे सतिगुरा
जब गुरु बोलह तब बिसमु होइ जाइ।। (पृ. १६७)

माई री पेखि रही बिसमाद।
अनहद धुनी मेरा मनु मोहिओ अचरज ता के स्वाद।। (पृ. १२२६)

इसी अनूठे इलाही 'प्रेम – रस' में लीन होकर ही पुकारा जाएगा –

सुनहु लोका मै प्रेम रसु पाइआ।। (पृ. ३७०)

नानक का पातिसाहु दिसै जाहरा।। (पृ. ३९७)

माई मै धनु पाइओ हरि नामु।।

मनु मेरो धावन ते छूटिओ करि बैठो बिसरामु।। (पृ. ११८६)

इस अलौकिक उत्तम – श्रेष्ठ आत्मिक अवस्था पर पहुंच कर, फिर **देह धारी गुरू की कतई आवश्यकता नहीं रहती। हां, इस अवस्था तक पहुंचने के लिए जिज्ञासु को अपने से ऊँची अवस्था वाले गुरमुखजनों, साधु, संत, हरिजन, महापुरुषों की संगत तथा मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। परन्तु उन्हें 'गुरू' मान लेना या कहना गुरमति के अनुकूल नहीं है।** यह गुरमुख जन, जिज्ञासु को इलाही मार्ग पर चलने में **प्रेरक और सहायक होते है।**

सेई 'पिआरे' मेलीं जिना मिलिआं तेरा नाम चित आवे।। (अरदास)

साधसंगि बसतु अगोचर लहै।। (पृ. २७१)

जिसु वखर कउ लैनि तू आइआ।।
राम नामु संतन घरि पाइआ।। (पृ. २८३)

सुभर भरे प्रेम रस रंगि।।
उपजै चाउ साध कै संगि।। (पृ. २८९)

सो साजनु सो सखा मीतु जो हरि की मति देइ।। (पृ. २९८)

साधु संगि सिखाइओ नामु।।
सरब मनोरथ पूरन काम।। (पृ. ३९३)

ओइ साजन ओइ मीत पिआरे।।
जो हम कउ हरि नामु चितारे।। (पृ. ७३९)

संता संगति मिलि रहै ता सचि लगै पिंआरु।। (पृ. ७५६)

होहु क्रिपाल सुआमी मेरे संतां संगि विहावे।। (पृ. ९६१)

कोई आवै संतो हरि का जनु संतो मेरा प्रीतम जनु संतो।।
मोहि मारगु दिखलावै।। (पृ. १२०१)

गुरू की ऐसी सर्वोच्च, पवित्र – पावन हस्ती को सम्मुख रख कर गुरबाणी में लिखा है–

इका बाणी इकु गुरु इको सबदु वीचारि।। (पृ. ६४६)

आदि अंति एके अवतारा।।
सोई गुरू समझियहु हमारा।। (चो. पा. १०)

इन पंक्तियों से स्पष्ट होता हैं कि 'गुरू' वही है, जिसका आदि और अंत में **केवल एक ही स्वरूप** हो, वह केवल सूक्ष्म **'परम – तत्व', 'ज्योति' या 'शबद' ही हो सकता है, न कि कोई शारीरिक या मनोकल्पित हस्ती, जो परिवर्तनशील है** और अन्त तक कायम नहीं रह सकती। दूसरी बात **'एकै'** की है। 'ज्योति', 'शबद' या 'परम – तत्व' के अतिरिक्त अन्य कोई हस्ती समय अनुसार दो – तीन और अनेक हो सकती हैं, परन्तु **'शबद' सदा ही 'एक'** है, सदा एक – सार 'प्रकाशमय' है और रहेगा। सूर्य तो नाशवान है और उसी के साथ धूप भी समाप्त हो जाएगी, परन्तु परमेश्वर 'अकाल' है तथा इसीलिए अकाल – पुरुष का का प्रकाश – रूप, 'शबद', 'नाम', 'ज्योति', 'परम – तत्पव' का अवतार भी सदा अटल है।

अंधकार किसी प्रकार भी, स्वयं प्रकाश प्राप्त नहीं कर सकता। इसी प्रकार मन के **भ्रम – भुलाव का अंधकार** भी अपने आप किसी कर्म – कांड, पाठ पूजा, ज्ञान – ध्यान, जप – तप, संयम द्वारा **दूर नहीं हो सकता।**

गुरू 'प्रकाश रूप' है, सतिगुरू के अनुभवी **'तत्व – ज्ञान'** के द्वारा ही हमें यह **'आत्मिक प्रकाश'** प्राप्त हो सकता है। इसी कारण गुरबाणी को **जग – चानण** (प्रकाश स्तम्भ) कहा गया है।

गुरबाणी इसु जग महि चानणु करमि वसै मनि आए।। (पृ. ६७)

जे सउ चंदा उगवहि सूरज चड़हि हजार।।
एते चानण होदिआं गुर बिनु घोर अंधार।। (पृ. ४६३)

सतिगुर बाझु न बेली कोई।।
ऐथै ओथै राखा प्रभु सोई।। (पृ. १०३१)

गुर बिनु घोरु अंधारु गुरू बिनु समझ न आवै।।
गुर बिनु सुरति न सिधि गुरू बिनु मुकति न पावै।। (पृ. १३९९)

बाहरमुखी **"अंधकार"** कई प्रकार के हैं–

1. प्रकाश का **अभाव,**
2. **दृष्टि हीनता का अंधकार,**
3. विद्या–हीन अवस्था का **दिमागी अंधकार।**

उपरोक्त वर्णित **'अंधकार'** तो हमारे शरीर **एवं** बुद्धि तक ही **सीमित** हैं तथा अपने प्रयास द्वारा किसी सीमा तक दूर किये जा सकते हैं। परन्तु इसके अतिरिक्त, एक अन्य मायिकी **'भ्रम–भुलाव' का 'अंधकार' भी है।** जिसके विषय में गुरबाणी यूं बयान करती है।

बजर कपाट काइआ गढ़ भीतरि कूड़ु कुसतु अभिमानी।।
भरमि भूले नदरि न आवनी मनमुख अंध अगिआनी।। (पृ. ५१४)

भरमु कोटु माइआ खाई कहु कितु बिधि तोड़ीऐ।।
गुरु पूरा आराधि बिखम दलु फोड़ीऐ।। (पृ. ५२२)

भरम लोभ मोह माइआ विकार।।
भ्रम छूटे ते एकंकार।। (पृ. ७३६)

अंतरि सबदु मिटिआ अगिआनु अंधेरा।। (पृ. ७९८)

भ्रम भै बिनसि गए खिन भीतरि अंधकार प्रगटे चानाणु।। (पृ. ८२५)

अंधे एहि न आखीअनि जिन मुखि लोइण नाहि।।
अंधे सेई नानका खसमहु घुथे जाहि।। (पृ. ९५४)

हमारी वृत्ति बाहरमुखी होने के कारण, हम केवल उन वस्तुओं को जानने का प्रयत्न करते हैं, जिन्हें नेत्र देख सकें, शरीर अनुभव कर सके या बुद्धि समझ सके। परन्तु गुरबाणी में स्पष्ट रूप में दर्शाये हुए **'मायिकी भ्रम–भुलाव' के 'अन्धकार'** के विषय में हमें–

सूझ ही नहीं
ज्ञान ही नहीं
ध्यान ही नहीं
आवश्यकता ही नहीं
फुरसत ही नहीं।

इसलिए इस 'भ्रम' रूपी **अंधकार को दूर करने** का हमें ख्याल ही नहीं आता।

आम जनता तो गुरबाणी नहीं पढ़ती तथा उन्हें इस–

मायिकी भ्रम
'भ्रम–भुलाव'
'भ्रम–कोट'
'भ्रम–सुता'
'घोर अंधकार'
'दुविधा'
'द्वैत–भाव'
'वज्र–कपाट'
'कूड़ कुसत्त'

का **पता ही नहीं,** परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि हम नित्य–प्रति गुरबाणी सुनते–पढ़ते, पाठ करते तथा अन्य अनेक कर्म–कांड करते हुए भी, इस मायिकी भ्रम–भुलाव के **'अंध–कूप'** में बे–परवाह होकर हम अपना **अमूल्य जीवन व्यर्थ खो रहे हैं।** हमारी इस अवस्था को यूं दर्शाया गया है–

पाठु पड़िओ अरु बेदु बीचारिओ निवलि भुअंगम साधे।।
पंच जना सिउ संगु न छुटकिओ अधिक अहंबुधि बाधे।।
पिआरे इन बिधि मिलणु न जाई मै कीए करम अनेका।। (पृ. ६४१)

पूजा करहि परु बिधि नही जाणहि दूजै भाइ मलु लाई।। (पृ. ९१०)

काहूं लै पाहन पूज धरयो सिर काहूं लै लिंग गरे लटकाइओ।।
काहूं लखिओ हरि अवाची दिसा महि
काहूं पछाह को सीसु निवाइओ।।
कोऊ बुतान को पूजत है पसु कोऊ म्रितान को पूजन धाइओ।।
कूर क्रिआ ऊरझिओ सभ ही जग
स्री भगवान को भेदु न पाइओ।। (सवयै पा. १०)

हम इस मायिकी भ्रम–भुलाव के **'अंध–कूप' में इतने संतुष्ट तथा 'मस्त' हैं** कि हमें इस 'तिमिर–अंधकार' को समझने–बूझने या इसमें से **निकलने का कभी–**

ख्याल ही नहीं आया
जरूरत ही नहीं प्रतीत हुई
इच्छा ही नहीं की
खोज ही नहीं की
उद्यम ही नहीं किया
साधना ही नहीं की।

इन भूली भटकी, अज्ञानी, विमुख रूहों में से कोई विरली रूह–

1. दृष्टि–हीन मनुष्य की भांति, मायिकी 'अंध–कूप' में जब अति दुखी होकर **त्राहि–त्राहि करती है,**
2. सत–संगत करते हुए **'मायिकी–भ्रम' की नींद से जागृत होती है,**
3. पिछले जन्मों की **कमाई जब प्रकट होती है,**

तब वह 'भ्रम' के 'अंध–कूप' **में से निकलने का प्रयत्न** करती है तथा गुरू–ज्ञान रूपी **'प्रकाश' को 'खोजती' है।**

जिन्हा दिसंदड़िआ दुरमति वंञै मित्र असाडड़े सेई।।
हउ ढूढेदी जगु सबाइआ जन नानक विरले केई।। (पृ. ५२०)

सचि रते से टोलि लहु से विरले संसारि।।
तिन मिलिआ मुखु उजला जपि नामु मुरारि।। (पृ. ९९४)

पूरब करम अंकुर जब प्रगटे भेटिओ पुरखु रसिक बैरागी ।।
मिटिओ अंधेरु मिलत हरि नानक जनम जनम की सोई जागी।। (पृ० २०४)

ऐसी **जागृत अभिलाषी 'रूह' की प्रेरणा तथा मार्गदर्शन के लिए** गुरबाणी यूं उपदेश करती हैं –

हरि सिमतर पूरन पदु पाइआ ।।
साधसंगि भै भरम मिटाइआ ।। (पृ. १९३)

भ्रम की जाली ता की काटी जा कउ साधसंगति बिस्वासा ।। (पृ. २०८)

भाइ भगति भरम भउ नासै हरि नानक सदा हजूरि ।। (पृ ४०६)

सबदि मरै तां एक लिव लाए ।।
अचरु चरै तां भरमु चुकाए।। (पृ. ४१२)

अचरु चरै ता सिधि होई सिधी ते बुधि पाई।।
प्रेम के सर लागे तन भीतरि ता भ्रमु काटिआ जाई।। (पृ ६०७)

जन नानक बिनु आपा चीनै मिटै न भ्रम की काई।। (पृ. ६८४)

कहत कबीर सुनहु रे प्रानी छोडहु मन के भरमा ।।
केवल नामु जपहु रे प्रानी परहु एक की सरनां ।। (पृ. ६९२)

नामु जपत कोटि सूर उजारा बिनसै भरमु अंधेरा ।। (पृ ७००)

जब पूर्व कर्मों का अंकुर प्रस्फुटित होता है, तो जिज्ञासु का मिलाप किसी 'रसिक बैरागी' पुरूष से होता है, जिसकी छुह तथा खमीर से उसके –

ख्यालों
धारणाओं
भावनाओं
रूचियों

शौक

मनोरंजन

जीवन – लक्ष्य

कार्य – व्यवहार, आदि

में अचानक परिवर्तन आ जाता है।

हां जी, ऐसे बरव्शे हुए रसिक बैरागी पुरूषों की निरंतर संगति तथा सेवा में अनुभव द्वारा –

इलाही प्रीत आकर्षण

तथा

आश्चर्यजनक रस

के परिणामस्वरूप उन्हें एक ऐसे **'पूर्ण गुरू'** से मिलाप की तीव्र कांरवी लग जाती है, जो –

प्रेम पुरूष है

अंतर्यामी है

सद बरवशिंद है

आश्चर्यजनक है

आनंद – विनोदी है

चोजी – प्रीत्तम है

सुरव – सागर है

पारस है

सच्चा पातशाह है

निरभउ निरवैर है

दुरव भंजन है

सर्व इच्छा पूरक है

सदा अंग – संग है

लाड – करता है

रवेल – रिवलाता है

मिठ बोलड़ा है

अति सुन्दर है
सब का पिता है
निमाणों का माण है
निताणों का ताण है
निथावों का थान है
पतित पावन है
शबद है
नाम है
पूरा है
वाहु – वाहु है।

भाई रे संत जना की रेणु ।।
संत सभा गुरु पाईऐ मुकति पदारथु धेणु ।। (पृ. १८)

वड भागि पाइआ गुरि मिलाइआ साध कै सतसंगीआ ।। (पृ. ७०४)

संत सभा ओट गुर पूरे धुरि मसतकि लेखु लिखाए ।।
जन नानक कंतु रंगीला पाइआ फिरि दूखु न लागै आए ।। (पृ. १२६६)

(क्रमशः)